नईदुनिया

संपादकीय

चुनाव प्रक्रिया में भरोसा सबसे बड़ी पूंजी

विशेष *गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) को लेकर चुनाव आयोग के भीतर दो चुनाव आयुक्तों की ओर से दर्ज आपत्तियों ने चुनावी व्यवस्था की पारदर्शिता पर बहस खड़ी कर दी है। उपलब्ध रिपोर्टों के अनुसार चुनाव आयुक्त सुखबीर सिंह संधू और विवेक जोशी ने पिछले दस महीनों में कम से कम 14 बार कुछ निर्णयों और आदेशों पर लिखित आपत्ति दर्ज की। इनमें मतदाता नाम जोड़ने और हटाने, वैधानिक फार्म-6 में बदलाव तथा मतदाता आंकड़ों और तकनीकी व्यवस्था के संचालन से जुड़े विषय शामिल बताए गए हैं। चार आपत्तियां एक ही दिन दर्ज होने की बात भी सामने आई है।*

दूसरी ओर चुनाव आयोग का कहना है कि इन टिप्पणियों और सुझावों को संस्थागत मतभेद या अलग निर्णय नहीं माना जाना चाहिए। आयोग के अनुसार विचार-विमर्श के दौरान अलग-अलग राय, सवाल और तकनीकी सुझाव आना सामान्य प्रशासनिक प्रक्रिया है तथा पिछले एक वर्ष में एसआईआर समेत उसके सभी अंतिम निर्णय तीनों आयुक्तों की सहमति से लिए गए हैं। इसलिए इस समय सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं है कि असहमति थी या नहीं, बल्कि यह है कि आपत्तियों में उठाए गए मुद्दों पर क्या विचार हुआ और अंतिम निर्णय किस प्रक्रिया के तहत लिया गया।

एसआईआर का उद्देश्य मतदाता सूची को अद्यतन करना, मृत, स्थानांतरित या अपात्र नामों की पहचान करना और पात्र नागरिकों को सूची में बनाए रखना है। यह उद्देश्य लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए आवश्यक है। लेकिन मतदाता सूची की शुद्धता जितनी महत्वपूर्ण है, उतना ही महत्वपूर्ण यह सुनिश्चित करना भी है कि किसी पात्र नागरिक का नाम केवल दस्तावेजी कमी, तकनीकी त्रुटि या प्रक्रिया की जटिलता के कारण न छूटे। विभिन्न चरणों में मसौदा सूचियों से 13 करोड़ से अधिक नाम कम होने की रिपोर्ट सामने आई है। यह अंतिम विलोपन का आंकड़ा नहीं है, क्योंकि दावे, आपत्तियां और पुनः समावेशन की प्रक्रिया इसके बाद भी चलती है।

एसआईआर में पारदर्शिता केवल आंकड़े जारी करने तक सीमित नहीं रह सकती। प्रत्येक नाम हटाने का कारण स्पष्ट होना चाहिए। संबंधित नागरिक को सूचना मिले, उसे पर्याप्त समय मिले और आपत्ति या अपील की प्रक्रिया सरल हो, यह चुनावी प्रशासन की जिम्मेदारी है। इसी तरह मतदाता पंजीकरण के वैधानिक फार्म में किसी भी महत्वपूर्ण बदलाव का आधार स्पष्ट और सार्वजनिक होना चाहिए।

राजनीतिक दलों ने इन घटनाओं को लेकर गंभीर आरोप लगाए हैं। दूसरी ओर आयोग ने सभी अंतिम निर्णयों को सर्वसम्मत बताया है। इन दोनों पक्षों के दावों का मूल्यांकन राजनीतिक नारों से नहीं, बल्कि आदेशों, आपत्तियों, नियमों और आधिकारिक रिकॉर्ड के आधार पर होना चाहिए। लोकतांत्रिक संस्थाओं में सवाल उठना असामान्य नहीं है; महत्वपूर्ण है कि जवाब रिकॉर्ड और प्रक्रिया से मिले।

चुनाव आयोग की विश्वसनीयता किसी एक दल या चुनाव से जुड़ा विषय नहीं है। मतदाता सूची नागरिक और लोकतांत्रिक व्यवस्था के बीच संबंध है। इसलिए एसआईआर की सफलता केवल कितने अपात्र नाम हटे, इससे नहीं मापी जानी चाहिए। असली कसौटी यह होगी कि कितने पात्र नागरिक सुरक्षित रूप से सूची में बने रहे, जिन्हें समस्या हुई उन्हें सुधार का अवसर मिला या नहीं और पूरी प्रक्रिया पर विश्वास कितना कायम रहा।

आजकल

साइबर सुरक्षा की शुरुआत जागरूकता से

डिजिटल तकनीक ने जीवन को आसान और तेज बनाया है। मोबाइल बैंकिंग, यूपीआई, ऑनलाइन खरीदारी और डिजिटल सेवाएं आज रोजमर्रा की जरूरत बन चुकी हैं। लेकिन सुविधा के साथ साइबर जोखिम भी बढ़ा है। साइबर ठग लोगों की तकनीकी जानकारी की कमी का फायदा उठाकर उनकी मेहनत की कमाई हड़प रहे हैं। ऐसे में जागरूकता ही साइबर अपराध से बचाव का सबसे बड़ा हथियार है।

जम्मू-कश्मीर जैसे क्षेत्रों में यह चुनौती अधिक महत्वपूर्ण है, जहां दूरदराज के इलाकों में डिजिटल साक्षरता अभी समान रूप से नहीं पहुंची है। श्रीनगर में भारतीय रिजर्व बैंक का वित्तीय साक्षरता और साइबर सुरक्षा जागरूकता सम्मेलन इसी जरूरत को रेखांकित करता है। साइबर सुरक्षा अब केवल पुलिस या तकनीकी विशेषज्ञों का विषय नहीं, बल्कि बैंक, सरकार और नागरिकों की साझा जिम्मेदारी है।

साइबर ठगी के तरीके लगातार बदल रहे हैं। कभी बैंक अधिकारी बनकर ओटीपी मांगा जाता है, कभी बिजली बिल या केवाईसी के नाम पर संदिग्ध लिंक भेजा जाता है। नौकरी, लॉटरी और सरकारी योजनाओं के नाम पर भी लोगों को निशाना बनाया जाता है। अनजान एप डाउनलोड करवाकर मोबाइल और निजी जानकारी हासिल करने की कोशिश भी होती है।

इससे बचने के लिए ओटीपी, पिन, पासवर्ड और बैंक संबंधी गोपनीय जानकारी किसी से साझा नहीं करनी चाहिए। संदिग्ध लिंक पर क्लिक करने और अनजान एप डाउनलोड करने से बचना जरूरी है। धोखाधड़ी होने पर तुरंत बैंक को सूचना देकर साइबर अपराध हेल्पलाइन 1930 या साइबर क्राइम डॉट जीओवी डॉट इन पर शिकायत करनी चाहिए। समय पर सूचना मिलने से धन को रोकने और अपराधियों तक पहुंचने की संभावना बढ़ती है।

साइबर सुरक्षा की जागरूकता गांवों, स्कूलों, कॉलेजों, बाजारों और कार्यस्थलों तक पहुंचनी चाहिए। स्थानीय भाषाओं में अभियान अधिक प्रभावी हो सकते हैं। डिजिटल इंडिया की सफलता केवल सेवाओं के विस्तार में नहीं, बल्कि उनके सुरक्षित इस्तेमाल में है। साइबर सुरक्षा कोई कठिन तकनीकी विषय नहीं, बल्कि सतर्क रहने की दैनिक आदत है।

विधानसभा में शोर तेज और सड़क पर खामोशी गहरी

जम्मू-कश्मीर से डॉ. शिशिर उपाध्याय

हंगामे की राजनीति में खो गई युवाओं की आवाज

जम्मू-कश्मीर की विधानसभा में इन दिनों जो दृश्य देखने को मिल रहा है, वह लोकतंत्र के मंदिर की गरिमा को ठेस पहुंचाता है। सदन के अंदर मेजें पीटी जा रही हैं, नारेबाजी हो रही है, कागज फाड़े जा रहे हैं और बाहर जनता अपनी ही समस्याओं में उलझी हुई है। जिस सदन से उम्मीद थी कि बिजली, पानी, सड़क, रोजगार और महंगाई पर चर्चा होगी, वहीं अब केवल आरोप-प्रत्यारोप का दौर चल रहा है। जनता ने बड़े उत्साह के साथ वर्षों बाद अपने प्रतिनिधियों को चुनकर भेजा था, पर वही जनता आज खुद को ठगा हुआ महसूस कर रही है। विधानसभा का सत्र शुरू होते ही हंगामा शुरू हो जाता है। सत्ता पक्ष विपक्ष पर आरोप लगाता है और विपक्ष सत्ता पक्ष को घेरने में लगा रहता है। बीच में कहीं जनता की आवाज दब जाती है।

जम्मू में स्मार्ट मीटर का मुद्दा हो या कश्मीर में सेब किसानों की परेशानी, युवा बेरोजगारों की फौज हो या दिहाड़ी मजदूरों की मजबूरी, महत्वपूर्ण विषयों पर गंभीर चर्चा नहीं होती। सदन की कार्यवाही कभी स्थगित हो जाती है तो कभी वाकआउट में खत्म हो जाती है और टीवी पर केवल शोर की तस्वीरें दिखती हैं। जनता आहत है, पर नेता मस्त हैं। जम्मू की गलियों में जाइए तो लोग पूछते हैं कि हमने वोट किसलिए दिया था। कश्मीर के गांव में जाइए तो किसान पूछता है कि उसकी फसल का दाम कौन तय करेगा। श्रीनगर के नौजवान के हाथ में डिग्री है, पर नौकरी नहीं है। उधमपुर के दुकानदार को बिजली बिल ने तोड़ दिया है। राजौरी-पुंछ के सीमांत गांव में आज भी सड़क नहीं है, अस्पताल नहीं है। सवालों का जवाब विधानसभा में नहीं मिलता।

राजनीतिक दल अपने एजेंडे में व्यस्त हैं। कोई अनुच्छेद 370 की बात को फिर जिंदा करना चाहता है, कोई परिसीमन पर राजनीति कर रहा है, कोई केवल कुर्सी के गणित में उलझा है। जनसमस्याओं की उपेक्षा इस स्तर पर है कि जनता को लगता है कि उसके मुद्दे किसी के घोषणा पत्र में ही नहीं हैं। पिछले कुछ महीनों में बिजली संकट गहराया है। स्मार्ट मीटर को लेकर जम्मू में बड़ा विरोध हुआ। कश्मीर में सर्दियों से पहले ही बिजली कटौती शुरू हो गई। पानी की सप्लाई अनियमित है। बेरोजगारी दर देश में सबसे अधिक वाले राज्यों में है, पर इन सब पर सदन में पांच मिनट भी चर्चा नहीं होती। हंगामा इस तरह हावी है कि जरूरी विधेयक भी बिना बहस के पास हो रहे हैं।

इन सबके बीच एक मांग, जो पूरे जम्मू-कश्मीर में सबसे अधिक गूंज रही है, वह है पूर्ण राज्य का दर्जा। पांच अगस्त 2019 को जब जम्मू-कश्मीर को केंद्र शासित प्रदेश बनाया गया था, तब कहा गया था कि यह अस्थायी व्यवस्था है और जल्द ही पूर्ण राज्य का दर्जा वापस दिया जाएगा। प्रधानमंत्री से लेकर गृहमंत्री तक ने कई बार कहा कि राज्य का दर्जा वापस मिलेगा। सुप्रीम कोर्ट ने भी सरकार से इस पर विचार करने को कहा था। आज तक इस पर कोई ठोस तारीख नहीं आई और इसी कारण जनता में असंतोष बढ़ रहा है। लोगों को लगता है कि केंद्र शासित प्रदेश में उनकी सुनवाई नहीं होती, अफसरशाही हावी है और चुनी हुई सरकार के पास पूरी शक्तियां नहीं हैं। विधायक कहते हैं कि उनके पास ट्रांसफर तक का अधिकार नहीं है और जनता कहती है कि उनके विधायक के पास कोई ताकत ही नहीं है। पूर्ण राज्य का दर्जा केवल एक प्रशासनिक मांग नहीं है। यह जम्मू-कश्मीर के लोगों के आत्मसम्मान की मांग है। यह उनके विश्वास की मांग है। जब तक पूर्ण राज्य नहीं मिलेगा, तब तक निवेश नहीं आएगा, बड़े उद्योग नहीं लगेंगे और युवाओं को रोजगार नहीं मिलेगा, क्योंकि उद्योगपति भी ऐसी जगह निवेश करने से बचते हैं, जहां शासन व्यवस्था अस्थिर हो।

विधानसभा में हंगामे से फायदा किसका हो रहा है, इसका सीधा जवाब है—किसी का नहीं। नुकसान केवल जनता का हो रहा है। सदन चलता है तो जनता के पैसे से चलता है। एक मिनट की कार्यवाही पर लाखों रुपये खर्च होते हैं और यदि वह मिनट हंगामे में बर्बाद हो जाए तो वह जनता की जेब पर डाका है। राजनीतिक दलों को समझना होगा कि जनता अब बहुत जागरूक है। वह सोशल मीडिया पर सब देखती है। वह जानती है कि कौन जनहित में बोल रहा है और कौन केवल कैमरे के लिए चिल्ला रहा है। यदि यही स्थिति रही तो आने वाले चुनाव में जनता हंगामा करने वालों को ही सदन से बाहर कर देगी।

जम्मू-कश्मीर के लोग शांति चाहते हैं, विकास चाहते हैं और अपना हक चाहते हैं। उन्होंने बंदूक का दौर देखा है, पत्थरबाजी का दौर देखा है और अब वे केवल काम चाहते हैं। सबसे पहले विधानसभा में हंगामा बंद होना चाहिए और जनसमस्याओं पर चर्चा के लिए एक न्यूनतम एजेंडा तय होना चाहिए। बिजली, पानी, सड़क, स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार पर रोजाना एक घंटा तय किया जाए और उस पर बिना किसी शोर के बात हो। पूर्ण राज्य के दर्जे पर केंद्र को स्पष्ट समय-सीमा देनी चाहिए। यह कहना पर्याप्त नहीं है कि उचित समय पर दर्जा देंगे। उचित समय कब आएगा, यह बताना होगा। और जब तक दर्जा नहीं मिलता, तब तक चुनी हुई सरकार को अधिक शक्तियां देनी होंगी, ताकि विधायक जनता के काम करा सकें।

राजनीतिक दलों को अपने घोषणा पत्रों पर वापस लौटना होगा। उन्होंने जनता से जो वादे किए थे, वे वादे पूरे करने होंगे। यदि स्मार्ट मीटर का विरोध किया था तो उसका समाधान निकालना होगा। यदि रोजगार का वादा किया था तो भर्तियां निकालनी होंगी। यदि सेब किसानों को एमएसपी का वादा किया था तो उसे देना होगा। जम्मू-कश्मीर की जनता बहुत धैर्यवान है। उसने बहुत कुछ सहा है। अब वह सहना नहीं चाहती। वह जीना चाहती है और जीने के लिए उसे शोर नहीं, बल्कि सदन में गंभीरता चाहिए। हंगामे की जगह काम चाहिए और केंद्र शासित प्रदेश की जगह पूर्ण राज्य का सम्मान चाहिए।

युवाओं में मानवता, जिम्मेदारी और सामाजिक चेतना की यात्रा के 57 वर्ष

राहुल सिंह परिहार

24 सितम्बर : एनएसएस दिवस पर विशेष

एनएसएस के शिविरों में श्रमदान जैसी गतिविधियाँ भी इसी सोच को आगे बढ़ाती हैं। किसी गाँव की सफाई, तालाब या सार्वजनिक स्थान को बेहतर बनाने का काम केवल एक गतिविधि नहीं है। जब युवा अपने हाथों से किसी सार्वजनिक समस्या के समाधान में योगदान देता है, तो उसके भीतर यह समझ विकसित होती है कि समाज की जिम्मेदारी केवल सरकार या किसी संस्था की नहीं है। वह स्वयं भी इस समाज का भागीदार है।

किसी समाज की वास्तविक ताकत उसकी इमारतों, तकनीक या आर्थिक संसाधनों से नहीं, बल्कि इस बात से पहचानी जाती है कि वहाँ के लोग एक-दूसरे के प्रति कितने संवेदनशील हैं। किसी जरूरतमंद की मदद के लिए आगे बढ़ना, किसी परेशान व्यक्ति की बात सुनना, किसी बच्चे के अधिकार के लिए आवाज उठाना या संकट के समय सहायता के लिए पहुँच जाना, ये छोटे दिखाई देने वाले व्यवहार ही समाज की बड़ी मानवीय पूँजी बनते हैं। राष्ट्रीय सेवा योजना की 57 वर्षों की यात्रा को इसी दृष्टि से देखें तो यह केवल एक योजना, शिविरों और गतिविधियों की कहानी नहीं है। यह युवाओं में उस संवेदना को विकसित करने की यात्रा है, जो उन्हें अपने भविष्य के बारे में सोचने वाले विद्यार्थी से समाज के प्रति जिम्मेदार नागरिक बनने की ओर ले जाती है।

24 सितम्बर 1969 को महात्मा गांधी की जन्म शताब्दी के अवसर पर राष्ट्रीय सेवा योजना यानी एनएसएस की शुरुआत हुई। इसका मूल भाव 'स्वयं से पहले आप' युवाओं को यह समझने का अवसर देता है कि व्यक्ति का विकास समाज से अलग नहीं हो सकता। समय के साथ समाज, तकनीक और युवाओं की दुनिया बदली है, लेकिन सेवा और सामाजिक जिम्मेदारी की जरूरत आज भी उतनी ही बनी हुई है। आज अक्सर कहा जाता है कि नई पीढ़ी अधिक व्यक्तिगत और डिजिटल हो गई है। मोबाइल और सामाजिक माध्यमों ने दुनिया को करीब जरूर ला दिया है, लेकिन वास्तविक संवाद कई बार कम हुआ है। इसके बावजूद एनएसएस के अनुभव बताते हैं कि युवा संवेदनहीन नहीं है। उसे सही अवसर और दिशा मिलने की जरूरत है। जब कोई युवा गाँव या शहरी बस्ती में जाकर लोगों के साथ समय बिताता है, उनकी समस्याओं को समझता है और समाधान की प्रक्रिया में भाग लेता है, तो समाज को देखने का उसका नजरिया बदलता है। एनएसएस की बड़ी उपलब्धि केवल वह काम नहीं है जो स्वयंसेवक करता है, बल्कि वह बदलाव है जो उस अनुभव के बाद उसके भीतर बना रहता है।

क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल में श्रमिकों के बच्चों की शिक्षा और व्यक्तित्व विकास के लिए एनएसएस की एक पहल इसका उदाहरण है। संस्थान के संकाय सदस्यों और कर्मचारियों ने स्वेच्छा से स्टेशनरी, पुस्तकें, नोटबुक, पेन-पेंसिल और अन्य शैक्षणिक सामग्री उपलब्ध कराई, जिसे एनएसएस स्वयंसेवकों के माध्यम से बच्चों तक पहुँचाया गया। इसका महत्व केवल सामग्री उपलब्ध कराने में नहीं है। इसके पीछे यह सोच है कि जिन बच्चों के परिवार रोजी-रोटी के संघर्ष में लगे हैं, उनके लिए शिक्षा के बेहतर अवसर उपलब्ध कराना समाज की साझा जिम्मेदारी है। जब संस्थान अपने संसाधनों को बच्चों के भविष्य से जोड़ता है और स्वयंसेवक उस सहयोग को बच्चों तक पहुँचाते हैं, तो शिक्षा सामाजिक जिम्मेदारी का माध्यम बन जाती है।

एनएसएस के शिविरों में श्रमदान जैसी गतिविधियाँ भी इसी सोच को आगे बढ़ाती हैं। किसी गाँव की सफाई, तालाब या सार्वजनिक स्थान को बेहतर बनाने का काम केवल एक गतिविधि नहीं है। जब युवा अपने हाथों से किसी सार्वजनिक समस्या के समाधान में योगदान देता है, तो उसके भीतर यह समझ विकसित होती है कि समाज की जिम्मेदारी केवल सरकार या किसी संस्था की नहीं है। वह स्वयं भी इस समाज का भागीदार है। एनएसएस युवाओं को केवल यह नहीं बताता कि समाज के लिए क्या करना चाहिए, बल्कि उन्हें समाज के बीच ले जाकर अपनी भूमिका को अनुभव करने का अवसर देता है।

रक्तदान एनएसएस की सेवा भावना को व्यवहार में देखने का सरल माध्यम है। मध्यप्रदेश के खरगौन जिले के सनावद स्थित रेवा गुर्जर बाल निकेतन महाविद्यालय में 24 सितम्बर 2019 से शुरू हुई रक्तदान यात्रा इसका उदाहरण है। सात वर्षों में लगातार रक्तदान शिविर आयोजित हुए और हजारों यूनिट रक्तदान कराया गया। बाद के वर्षों में गोदग्रामों में भी शिविर लगाए गए, जहाँ ग्रामीण समुदाय ने भागीदारी की। रक्तदान केवल रक्त की उपलब्धता सुनिश्चित करने का प्रयास नहीं है, बल्कि यह उस भावना को मजबूत करता है जिसमें एक व्यक्ति किसी अनजान व्यक्ति के जीवन की जरूरत को अपनी जिम्मेदारी समझता है।

कोविड-19 महामारी के दौरान एनएसएस स्वयंसेवकों ने मास्क और सैनिटाइजर वितरण, जरूरतमंदों तक भोजन पहुँचाने, प्रवासी श्रमिकों की सहायता, जागरूकता और प्रशासन के सहयोग जैसे कार्य किए। संकट के समय स्वयंसेवा का अर्थ केवल किसी अभियान में शामिल होना नहीं था। यह अपने आसपास के लोगों की जरूरत समझकर अपनी क्षमता के अनुसार आगे आने का समय था। इस अनुभव ने दिखाया कि स्वयंसेवा सामान्य परिस्थितियों की गतिविधि ही नहीं, बल्कि कठिन समय में समाज के साथ खड़े होने की तैयारी भी है।

मध्यप्रदेश में वर्ष 2019 से एनएसएस स्वयंसेवकों को बाल संरक्षण के विषय से जोड़ने की दिशा में भी काम हुआ। बाल श्रम, बाल विवाह और बाल दुर्व्यापार जैसी परिस्थितियों से बच्चों को बचाने में युवाओं की भागीदारी ने सेवा के अर्थ को एक नए सामाजिक प्रश्न से जोड़ा। किसी बच्चे को संकट में देखकर केवल सहानुभूति पर्याप्त नहीं है। उसके अधिकारों को समझना, सही संस्था तक जानकारी पहुँचाना और जरूरत पड़ने पर उसके पक्ष में खड़ा होना भी जिम्मेदार नागरिकता है। 'आगाज इंटर्नशिप' जैसे प्रयासों ने युवाओं को बाल संरक्षण से जुड़े स्थानीय सवालों पर विचार और समाधान विकसित करने का अवसर दिया। मानवता का संस्कार केवल किसी शिविर में पैदा नहीं होता। उसका पहला विद्यालय परिवार होता है। बुजुर्गों का सम्मान, जरूरतमंद की मदद, हर व्यक्ति के साथ गरिमापूर्ण व्यवहार और मतभेद के बावजूद संवाद बनाए रखना जैसे व्यवहार अगली पीढ़ी को मानवीय बनाते हैं। एनएसएस इसी सीख को समाज के बड़े स्तर पर अनुभव में बदलता है। स्वयंसेवक जब समाज के बीच जाता है तो वह केवल लोगों को कुछ सिखाने नहीं जाता, बल्कि उनकी परिस्थितियों और संघर्षों से स्वयं भी सीखता है। इसी दोतरफा सीखने में स्वयंसेवा का वास्तविक अर्थ छिपा है।

एनएसएस की मतदाता जागरूकता गतिविधियों ने युवाओं की नागरिक भूमिका को भी मजबूत किया है। 'मेरा वोट-मेरा अधिकार' जैसे अभियानों के माध्यम से रैलियों, नुक्कड़ नाटकों, चित्रकला और चुनावी प्रक्रिया की जानकारी के जरिए लोगों को जागरूक किया गया। लोकतंत्र केवल मतदान तक सीमित नहीं है। अपने आसपास की समस्याओं को समझना, सार्वजनिक मुद्दों पर संवाद करना और समाज के प्रति जिम्मेदारी महसूस करना भी लोकतांत्रिक नागरिकता का हिस्सा है।

डिजिटल दुनिया में भी मानवीय जिम्मेदारी उतनी ही जरूरी है। सूचना साझा करने से पहले उसकी सत्यता जाँचना, किसी की निजता और सम्मान का ध्यान रखना तथा अफवाह को आगे न बढ़ाना आज की नागरिक जिम्मेदारी है। माय भारत जैसे मंच युवाओं को सेवा, प्रशिक्षण, इंटर्नशिप, नवाचार और मार्गदर्शन के अवसरों से जोड़ते हैं। तकनीक माध्यम बदल सकती है, लेकिन मानवीय मूल्य नहीं।

57 वर्षों में एनएसएस के कार्यक्रम और काम करने के तरीके बदले हैं, लेकिन 'स्वयं से पहले आप' की भावना आज भी प्रासंगिक है। एनएसएस का प्रतीक चिन्ह कोणार्क के सूर्य मंदिर के रथ के पहिए से प्रेरित है, जो निरंतर गति और परिवर्तन का प्रतीक है। सेवा भी किसी एक दिन या एक शिविर की गतिविधि नहीं, बल्कि समाज के साथ निरंतर आगे बढ़ने की प्रक्रिया है।

आज जरूरत है कि एनएसएस केवल गतिविधियों की संख्या गिनने तक सीमित न रहे, बल्कि यह भी विचार करे कि उन गतिविधियों से समाज में क्या बदला और स्वयंसेवक के भीतर क्या परिवर्तन आया। यही यात्रा सेवा को अनुभव, अनुभव को संवेदना और संवेदना को सामाजिक जिम्मेदारी में बदलती है। एनएसएस की सबसे बड़ी विरासत ऐसे युवा हैं जो केवल अपने लिए सफल न हों, बल्कि समाज के लिए संवेदनशील, जिम्मेदार और उपयोगी भी हों।यदि चाहें तो मैं इसका ठीक 900 शब्दों का संस्करण भी तैयार कर सकता हूँ, शब्द-गणना करके।

शौक भी अब उपलब्धि की दौड़ में ...

एक समय था जब शौक का अर्थ ऐसी गतिविधि से था, जिसे करने के लिए किसी बाहरी कारण की जरूरत नहीं होती थी। किताब पढ़ना अच्छा लगता है तो पढ़िए, दौड़ना पसंद है तो दौड़िए, खाना बनाना अच्छा लगता है तो बनाइए या खाली समय में चित्र बनाइए। शौक का मूल्य इसी में था कि वह जीवन की व्यस्तता से थोड़ी देर बाहर निकालता था। लेकिन नई पीढ़ी के बीच शौक का एक नया रूप दिखाई दे रहा है। अब केवल कोई काम करना पर्याप्त नहीं है, उसे बेहतर करना, उसका हिसाब रखना, उसकी उपलब्धियां दर्ज करना और कई बार उन्हें दुनिया के सामने प्रदर्शित करना भी जरूरी महसूस होने लगा है। इस प्रवृत्ति को 'हॉबीमैक्सिंग' कहा जा रहा है।

हॉबीमैक्सिंग का मूल विचार आज की डिजिटल संस्कृति से निकलता है - समय का अधिकतम उपयोग, स्वयं को लगातार बेहतर बनाना और किसी भी गतिविधि को उपलब्धि में बदल देना। समस्या तब शुरू होती है, जब आराम के लिए चुना गया शौक भी लक्ष्य, आंकड़े और प्रदर्शन की कसौटी पर परखा जाने लगे। किताब पढ़ी तो कितनी पढ़ीं, फिल्म देखी तो कितनी देखीं, कितनी दौड़ लगाई, कितने व्यायाम किए, कितने रेस्तरां आजमाए - हर अनुभव के साथ एक संख्या जुड़ने लगी है।

डिजिटल माध्यमों ने इस प्रवृत्ति को और मजबूत किया है। ऐसी अनेक ऐप हैं, जिन पर लोग अपनी पढ़ी किताबों, देखी फिल्मों, खेले खेलों या आजमाए गए रेस्तरां का रिकॉर्ड रखते हैं। रिकॉर्ड रखना अपने आप में गलत नहीं है। कई लोगों के लिए यह अपनी रुचियों को व्यवस्थित करने या प्रगति समझने का उपयोगी तरीका हो सकता है। लेकिन जैसे ही संख्या स्वयं उद्देश्य बन जाती है, शौक का स्वभाव बदलने लगता है। जो काम आनंद के लिए शुरू किया था, वह धीरे-धीरे लक्ष्य पूरा करने की बाध्यता बन सकता है।

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जिस चीज को मापा जा सकता है, उसे बढ़ाने की कोशिश की जाए। इसलिए किसी शौक को आंकड़ों में बदलते ही व्यक्ति उस आंकड़े को बेहतर करने में जुट सकता है, भले ही उसका वास्तविक आनंद उससे जुड़ा न हो। यहीं अवकाश और काम के बीच की दूरी कम होने लगती है। किताब पढ़ना आत्मिक आनंद देने के बजाय पढ़ी गई किताबों की संख्या बढ़ाने का साधन बन जाता है। दौड़ना शरीर और मन को तरोताजा करने के बजाय समय, दूरी और गति सुधारने की प्रतियोगिता बन सकता है।

इस प्रवृत्ति का दूसरा पहलू सामाजिक प्रदर्शन है। सामाजिक माध्यमों पर दूसरों का जीवन लगातार हमारे सामने है। कोई सुबह व्यायाम कर रहा है, कोई किताबों की सूची साझा कर रहा है, कोई खाना बना रहा है और कोई अपने रचनात्मक काम की तस्वीरें डाल रहा है। धीरे-धीरे तुलना पैदा होती है कि दूसरे लोग हमसे ज्यादा कर रहे हैं और हमारा समय कहीं बेकार तो नहीं जा रहा। आराम करना अपराधबोध पैदा करने लगता है। खाली बैठना समय गंवाना लगता है और हर खाली घंटे को किसी सार्थक गतिविधि में बदलने की बेचैनी बढ़ती जाती है।

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जिस चीज को मापा जा सकता है, उसे बढ़ाने की कोशिश की जाए। इसलिए किसी शौक को आंकड़ों में बदलते ही व्यक्ति उस आंकड़े को बेहतर करने में जुट सकता है, भले ही उसका वास्तविक आनंद उससे जुड़ा न हो। यहीं अवकाश और काम के बीच की दूरी कम होने लगती है। किताब पढ़ना आत्मिक आनंद देने के बजाय पढ़ी गई किताबों की संख्या बढ़ाने का साधन बन जाता है।

23 वर्षीय शुभा पॉलिसेट्टी का अनुभव इस विरोधाभास को समझने में मदद करता है। उन्होंने अपने शौक को एक व्यक्तिगत पाठ्यक्रम की तरह व्यवस्थित किया, जिसमें समय-सीमा और लक्ष्य तय थे। उन्हें इससे प्रेरणा मिलती थी, लेकिन एक घंटे टेलीविजन देखने में निकल जाएं तो उन्हें लगता था कि उन्होंने कुछ उत्पादक नहीं किया। उनके लिए शौक आराम से अधिक चुनौती बन गए। खाना बनाने जैसी गतिविधि को कैमरे के सामने दर्ज करने की कोशिश में उन्हें लगा कि वास्तविक अनुभव का आनंद ही कम हो गया।

यही आज की डिजिटल जिंदगी का बड़ा विरोधाभास है। हम जीवन जी भी रहे हैं और उसी समय उसे दिखाने की तैयारी भी कर रहे हैं। किसी किताब को पढ़ने से अधिक महत्वपूर्ण यह लग सकता है कि उसके बारे में पोस्ट किया जाए। किसी रचनात्मक काम को करने से अधिक जरूरी यह लग सकता है कि लोग उसके बारे में क्या सोचेंगे। धीरे-धीरे निजी आनंद सार्वजनिक मान्यता पर निर्भर होने लगता है।

कुछ युवाओं के लिए यह प्रवृत्ति प्रेरणा का माध्यम भी हो सकती है। लक्ष्य तय करना, अपनी प्रगति देखना और किसी गतिविधि में अनुशासन लाना जीवन में सकारात्मक बदलाव ला सकता है। समस्या हॉबीमैक्सिंग के अस्तित्व में नहीं, बल्कि उस मानसिकता में है जिसमें हर गतिविधि से परिणाम, उत्पादकता या मान्यता की अपेक्षा की जाने लगे। शौक यदि व्यक्ति को बेहतर महसूस कराता है तो वह उपयोगी है; उसके लिए प्रमाणपत्र जरूरी नहीं।

विडंबना यह है कि विश्राम भी अब उत्पादकता से जोड़ दिया गया है। आराम इसलिए करें ताकि अगले दिन बेहतर काम कर सकें। व्यायाम इसलिए करें ताकि प्रदर्शन सुधरे। पढ़ें ताकि ज्ञान बढ़े। रचनात्मक काम करें ताकि कुछ प्रकाशित या साझा किया जा सके। यानी ऐसा समय, जिसका कोई उद्देश्य नहीं होना चाहिए था, वह भी किसी उद्देश्य के अधीन हो गया है।

शायद हमें यह स्वीकार करने की जरूरत है कि हर अच्छी चीज का कोई माप होना जरूरी नहीं। कुछ किताबें केवल इसलिए पढ़ी जा सकती हैं क्योंकि वे अच्छी लगती हैं। कुछ दौड़ केवल इसलिए लगाई जा सकती हैं क्योंकि दौड़ते हुए मन हल्का होता है। कुछ भोजन केवल स्वाद के लिए बनाया जा सकता है और कुछ घंटे केवल इसलिए बिताए जा सकते हैं क्योंकि उस समय कुछ करना जरूरी नहीं।

शौक की सबसे बड़ी खूबी यही थी कि वह जीवन को काम से अलग करता था। यदि हम उसे भी काम की तरह मापने और प्रदर्शित करने लगेंगे, तो आराम की वह जगह कहां बचेगी जहां व्यक्ति बिना किसी लक्ष्य के सिर्फ अपने लिए कुछ कर सके? आज की पीढ़ी के सामने चुनौती अधिक शौक ढूंढना नहीं, बल्कि अपने शौक को हर समय उपलब्धि में बदलने से बचाना है। कभी-कभी कुछ करना केवल इसलिए भी पर्याप्त है कि उसे करते हुए अच्छा लगता है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)